वस्तुतः प्रत्येक प्राणी केवल अपने में और अपने स्वार्थ में रुचि रखता है। परम पुरुष श्रीकृष्ण में किसी की भी रुचि नहीं है। अर्जुन से यह आशा थी कि वह अपने स्वार्थ की उपेक्षा करके भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा का अनुसरण करेगा, जो प्राणीमात्र का वास्तविक स्वार्थ है। बद्धजीव इस सत्य को भूल जाता है और इसी कारण सांसारिक दुःख भोगता है। अर्जुन का विचार है कि युद्ध में विजय भी उसके लिए शोक का ही कारण सिद्ध होगी।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।।३१।।

न=न; **च श्रेयः**=कल्याण ही; **अनुपश्यामि**=देखता हूँ; **हत्वा**=मार कर; **स्वजनम्**=अपने कुल को; **आहवे**=युद्ध में; **न**=नहीं; **कांक्षे**=चाहता; **विजयम्**=विजय; **कृष्ण**=हे कृष्ण; **न च**=और न ही; **राज्यम्**=राज्य; **सुखानि च**=और सुख।

अनुवाद

युद्ध में स्वजनों का वध करने से मुझे कुछ भी श्रेयप्राप्ति होती दिखाई नहीं देती, और न ही हे गोविन्द! युद्ध से प्राप्त होने वाले विजय, राज्य अथवा सुख की मुझे इच्छा ही है।।३१।।

तात्पर्य

यह जाने बिना कि उनका वास्तविक स्वार्थ भगवान् श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) में है, सुख की कामना से प्रेरित हुए बद्ध जीव देह के सम्बन्धों में ही आसक्त रहते हैं। वे मोहवश भूल जाते हैं कि प्राकृत सुख के स्रोत भी श्रीकृष्ण हैं। प्रतीत होता है कि अर्जुन को तो क्षात्र-धर्म का भी विस्मरण हो गया है। शास्त्र के अनुसार केवल दो प्रकार के व्यक्ति जाज्वल्यमान सूर्यमण्डल में प्रविष्ट होने के योग्य हैं—एक श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए क्षत्रिय और दूसरे पूर्णरूप से भगवद्भक्ति-परायण संन्यासीगण। सम्बन्धियों की तो बात ही क्या, अर्जुन तो अपने शत्रुओं को भी मारने से पराङ्मुख हो रहा है। उसका विश्वास है कि बान्धवों का वध करने से उसके जीवन में सुख का अत्यंत अभाव हो जायगा। अतः वह युद्ध नहीं करना चाहता, वैसे ही जैसे कोई तृप्त व्यक्ति भोजन बनाने में प्रवृत्त नहीं होता। वरन्, उसने वनगमन करके एकान्त में निराशा भरा जीवन बिताने का निश्चय किया है। क्षत्रिय होने के कारण अपने निर्वाह के लिए उसे एक राज्य चाहिए, क्योंकि क्षत्रियों के लिए अन्य कोई कार्य उचित नहीं है। पर अर्जुन का तो कोई राज्य नहीं है। उसके लिए राज्य-प्राप्ति का एकमात्र साधन भाइयों से युद्ध कर अपना पैतक राज्य पुनः हस्तगत करना है। परन्तु ऐसा करना उसे अभीष्ट नहीं। इस सब परिस्थिति को देखते हुए वह अपने को वन में जाकर निराशामय एकान्त वास करने के योग्य समझता है।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।।३२।।